SHIKSHA SAMVAD
International Open Access Peer-Reviewed & Refereed
Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 2584-0983 (Online)
Volume-02, Issue-02, December- 2024
www.shikshasamvad.com

# "ध्वनि तत्त्व–विमर्श"

**रत्नेश पाण्डेय**
शोध छात्र
वीर कुँवर सिंह वि0वि0 आरा (बिहार)

**सारांश :**

*"काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः (ध्वन्यालोक1/1/) अर्थात काव्य की आत्मा ध्वनि है, ऐसा मेरे पूर्ववर्ती विद्वानों का भी मत है।" वास्तव में इस सिद्धान्त के मूल संकेत ध्वनिकार के समय से बहुत पहले वैयाकरणों के सूत्रों में ; स्फोट आदि के विवेचन में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय दर्शन में भी व्यंजना एवं अभिव्यक्ति की चर्चा बहुत प्राचीन है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन से पूर्व रस, अलंकार एवं रीतिवादी आचार्य अपने–अपने सिद्धान्तों का पुष्ट प्रतिपादन कर चुके थे; और यद्यपि वे ध्वनिसिद्धान्त से पूर्णतः परिचित नहीं थे, फिर भी आनन्दवर्धन का कहना है कि वे कम से कम उसके सीमान्त तक अवश्य पहुँच गये थे।[1] अभिनवगुप्त ने पूर्ववर्ती आचार्यों में उद्‌भट और वामन को साक्षी माना है। उद्‌भट का ग्रन्थ 'भामहविवरण' आज उपलब्ध नहीं है, अतएव हमें सबसे पहले ध्वनि–संकेत वामन के वक्रोक्ति विवेचन में ही मिलता है; और ध्वनिकार ने शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना पर आश्रित ध्वनि, को काव्य की आत्मा घोषित किया– "काव्यस्यात्मा ध्वनिः"[2]*

ध्वनिकार ने अपने सामने दो निश्चित लक्ष्य रखे हैं–1. ध्वनि–सिद्धान्त की निर्भ्रान्त शब्दों में स्थापना करना, तथा यह सिद्ध करना कि पूर्ववर्ती किसी भी सिद्धान्त के अन्तर्गत उसका समाहार नहीं हो सकता; 2. रस, अलंकार, रीति, गुण और दोष विषयक सिद्धान्तों का सम्यक् परीक्षण करते हुए ध्वनि के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित करना और इस प्रकार काव्य के सर्वांगपूर्ण सिद्धान्त की एक रूपरेखा बाँधना। यह सब होते हुए भी ध्वनि सम्प्रदाय इतना लोकप्रिय न होता यदि अभिनवगुप्त की प्रतिभा का वरदान उसे न मिलता। उनके लोचन का वही गौरव है, जो महाभाष्य का। अभिनव ने अपनी प्रज्ञा और प्रौढ़ विवेचन के द्वारा ध्वनि विषयक समस्त भ्रान्तियों और आक्षेपों को निर्मूल कर दिया और उधर रस की प्रतिष्ठा को अकाट्य शब्दों में स्थिर किया।[3]

आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि–विरोधियों के समस्त मतों का खण्डन किया, तथा ध्वनि की ऐकान्तिक सत्ता स्थापित की। सर्वप्रथम उन्होंने काव्य में दो प्रकार के अर्थों– वाच्यार्थ एवं प्रतीयमान अर्थ को स्वीकार किया। पुनः बतलाया कि कवियों को वाच्यार्थ पर अधिक जोर न देकर उससे निकलने वाले प्रतीयमान अर्थ पर ही बल देना चाहिए ; क्योंकि प्रतीयमान अर्थ ही काव्य में मुख्य अर्थ है; और वह प्रत्येक महाकवि के काव्य में पाया जाता है। वह प्रतीयमान/व्यंग्यार्थ केवल सहृदयों की बुद्धि का ही विषय है। इस प्रकार उन्होंने ध्वनि की स्थापना की है तथा उसके स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया है।4

ध्वनिकार आनन्दवर्धन का कथन है कि सहृदयों द्वारा श्लाध्य अर्थ दो प्रकार का होता है– वाच्य एवं प्रतीयमान– 'योऽर्थः सहृदयश्लाध्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।

वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।।2।।[5]

अर्थात् सहृदयों द्वारा प्रशंसित जो अर्थ काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है, उसके वाच्य एवं प्रतीयमान नामक दो भेद कहे गये हैं।।2।। शरीर में आत्मा के समान सुन्दर (गुणालंकारयुक्त), उचित (रसादि के अनुरूप) रचना के कारण रमणीय काव्य के सार रूप में स्थित, सहृदय प्रशंसित जो अर्थ है, उसके वाच्य एवं प्रतीयमान नामक दो भेद हैं। ध्येय है कि उक्त कारिका में वाच्य से अलंकारों का ग्रहण किया गया है, वाच्यार्थ का नहीं; अतः इस पर आचार्य विश्वनाथ का आक्षेप उचित नहीं है। पूर्वपक्ष में प्रदर्शित करते हुए लिखा था– ''शब्दार्थशरीरं काव्यम्।'' इनमें से शब्द तो शरीर के स्थूलत्वादि के समान सर्वजनसंवेद्य होने से शरीरभूत ही है; परन्तु अर्थ तो स्थूल शरीर की भाँति सर्वजन संवेध नहीं है। व्यंग्यार्थ तो सहृदयैक वेद्य है ही; पर उससे भिन्न वाच्यार्थ भी संकेत ग्रह पूर्वक व्युत्पन्नपुरूषों को ही प्रतीत होता है; अतएव अर्थ सर्वजन संवेद्य न होने से स्थूल–शरीर–स्थानीय नहीं है।[6]

जब शब्द को शरीर मान लिया तो फिर उसको अनुप्राणित करने वाले आत्म को मानना भी आवश्यक है; और यह अर्थ उस आत्मा का स्थान लेता है; परन्तु सारा अर्थ नहीं ; केवल सहृदय श्लाध्य अर्थ ही काव्य की आत्मा है; इसलिए अर्थ के दो भेद किये हैं; एक वाच्य और दूसरा प्रतीयमान। सहृदय श्लाध्य या प्रतीयमान अर्थ ही काव्य की आत्मा है, वाच्यार्थ को काव्य की आत्मा नहीं कह सकते, उसे हम इस रूप में सूक्ष्म शरीर, अन्तःकरण अथवा मनः स्थानीय मान सकते हैं।[7]

'ध्वनि की व्याख्या के लिए निसर्गतः सबसे उपयुक्त ध्वनिकार के ही शब्द हो सकते है–

अर्थात् जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण करयत्रार्थः शब्दो **वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।**

**व्यंक्तः काव्यविशेषः सध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।3।।[8]**

के उस (प्रतीयमान) अर्थ को प्रकाशित करते है; उस काव्य विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है। आगे ध्वनिकार उस प्रतीयमान अर्थ को उपमा के द्वारा और स्पष्ट करते हुए कह रहे हैं–

'प्रतीयमानं पुनरन्यदेव,

वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

यत्तत्प्रसिद्धधावयवातिरिक्तं

विभाति लावण्यमिवांगनासु।।4।।[9]

अर्थात् वह प्रतीयमान (व्यंग्यार्थ/ध्वनि) अर्थ कुछ और ही चीज है, जो रमणियों के प्रसिद्ध (मुख, नाक, कान, नेत्रादि) अवयवों से बिल्कुल भिन्न (उनके) लावण्य (सौन्दर्य) के समान महाकवियों की वाणियों में (वाच्यार्थ से अलग ही) भासित होता है। अतएव यह विशिष्ट अर्थ प्रतिभाजन्य है, स्वादु (सरस) है, वाच्यार्थ से भिन्न कुछ दूसरी ही वस्तु है; और प्रतीयमान/प्रतीतिगम्य/सहृदय–हृदय संवेद्य है–

**'सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु,**
**निष्यन्दमाना महतां कवीनाम्।**
**अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति,**
**परिस्फुरन्त प्रतिभाविशेषम्।।6।।**[10]

अर्थात उस सुस्वादु अर्थ (प्रतीयमान अर्थ) को बिखेरती हुई, बड़े–बड़े कवियों की सरस्वती अलौकिक तथा अतिभासमान प्रतिभा विशेष को प्रकट करती है।

अभिनव गुप्त– (सर्वत्र शब्दार्थयोरूभयोरपि ध्वननव्यापारः.....प्रतिपादितम्) के कहने का तात्पर्य यह है कि कारिका के अनुसार ध्वनिसंज्ञा केवल काव्य को ही दी गई, वरन् शब्द, अर्थ और शब्द–अर्थ के व्यापार–इन सबको ध्वनि कहते हैं। ध्वनि शब्द के व्युत्पत्ति परक अर्थों से भी ये पाँचों भेद सिद्ध हो जाते हैं।

1. ध्वनति यः स व्य जकः शब्दः ध्वनिः– जो ध्वनि करे या कराये वह व्यंजक शब्द ध्वनि है।
2. ध्वनति ध्वनयति वा यःसः व्यंजकोऽद्यर्थ ध्वनिः– जो ध्वनित करेया कराये वह व्यंजक अर्थ ध्वनि है।
3. ध्वन्यते इति ध्वनिः– जो ध्वनित किया जाय वह ध्वनि है। इसमें रस, अलंकार और वस्तु (व्यंग्यार्थ) के ये तीनों रूप आ जाते हैं।
4. ध्वन्यते अनेन इति ध्वनि जिसके द्वारा ध्वनित किया जाय वह ध्वनि है।

इससे शब्द–अर्थ के व्यापार–व्यंजना आदि शक्तियों का बोध होता है।

5. ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनि जिसमें वस्तु, अलंकार एवं रसादि ध्वनित हों, उस काव्य को ध्वनि कहते हैं।[11]

इस प्रकार का प्रयोग पाँच भिन्न–भिन्न; परन्तु परस्पर सम्बद्ध अर्थों में होता है– 1. व्यंजक शब्द; 2. व्यंजक अर्थ; 3. व्यंग्य अर्थ, 4. व्यंजना व्यापार और व्यंग्य प्रधान काव्य। अस्तु, सारतः ध्वनि का अर्थ है– व्यंग्य ; परन्तु पारिभाषिक रूप में यह व्यंग्य वाच्यातिशायी होना चाहिए– ''वाच्यातिशायिनि व्यंग्ये ध्वनिः''– (साहित्य दर्पण) इस आतिशय्य का आधार है– चारूत्व अर्थात् रमणीयता का उत्कर्ष–

''चारूत्तवोत्कर्षनिबन्धना हि वाच्य–व्यंग्ययोः प्राधान्य विक्षा'' (ध्वन्यालोक) अतएव वाच्यातिशायी का अर्थ हुआ– वाच्यार्थ से अधिकरमणीय ; और ध्वनि का संक्षित अर्थ हुआ– ''वाच्य से अधिक रमणीय को 'ध्वनि' कहते हैं।[12]

ध्वनि–स्वरूप–विवेचन के प्रसंग में ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने ध्वनि की निम्न परिभाषा दी है–

**''यत्रार्थः शब्दो वा नमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौं।**
**व्यंक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।3।।**[13]

अर्थात् जहाँ शब्द और अर्थ उस प्रतीयमान अर्थ के लिए (जो कवि की वाणी का अभिप्राय है) अपना गौण रूप ग्रहण कर लेते हैं; उस काव्य विशेष को विद्वानों ने ध्वनि की संज्ञा दी है। आचार्य मम्मट ने ध्वनि की निम्न परिभाषा प्रस्तुत की है–

''इदमुत्तममतिशयिनि व्यंगये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।।4।।[14]

अर्थात् वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ के अतिशायी होने पर ही काव्य उत्तम होता है; और विद्वानों ने उसको 'ध्वनि' (काव्य के नाम से) कहा है।

मम्मट ने मध्यम और अधम रूप में काव्य के दो भेद और प्रस्तुत किये हैं। मध्यम काव्य में वाच्यार्थ प्रधान और व्यंग्यार्थ गौण रहता है; और अधम काव्य व्यंग्यार्थ से शून्य एवं गुणालंकार युक्त शब्द रचना मात्र है।[15]

आचार्य मम्मट के अनुकरण पर आचार्य विश्वनाथ ने ध्वनि के लक्षण में कोई नवीन बात न कहकर उन्हीं के शब्दों को दुहरा दिया है–

''वाच्यातिशयिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्''[16]

यह ध्वनि का लक्षण है। यहाँ 'वाच्यातिशयिनि व्यंग्ये का अर्थ है, वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ का अधिक रमणीय होना। ध्वनि परम्परा में ध्वनि के मूल पाँच भेद हैं। दो भेद लक्षणावृत्ति पर आधारित है; और तीन भेद अभिधा पर आश्रित हैं। मम्मट ने लक्षणामूलक ध्वनि को अविवक्षित वाच्य ध्वनि और अभिधामूला ध्वनि को विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि कहा है। लक्षणा मूला ध्वनि में वाच्यार्थ की विवक्षा नहीं होती; इसके विपरीत अभिधामूलाध्वनि में वाच्य के विवक्षित होने पर भी उसकी उपयोगिता अन्य प्रतीयमान वस्तु आदि के निमित्त होती है इत्यादि।[17]

आनन्दवर्धन ने ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना सर्वथा निर्भ्रान्त रूप से की थी; परन्तु इस सिद्धान्त का विरोध आनन्द वर्धन से पहले भी होता रहा; और बाद में भी हुआ अपने से पूर्ववर्ती ध्वनि विरोधियों की युक्तियों का समाधान तो आनन्दवर्धन ने स्वयं ही कर दिया था; परन्तु आनन्दवर्धन के पश्चात् होने वाले ध्वनि विरोधियों की युक्तियों का समाधान अभिनव गुप्त एवं आचार्य मम्मट ने मुख्य रूप से किया था और उनके पश्चात् यह ध्वनि सिद्धान्त सर्वमान्य रूप से प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ। ध्वनि का विरोध करने वाले आचार्यों के मतों को तीन मुख्य वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती ध्वनि विरोधी
2. आनन्दवर्धन के उत्तरवर्ती ध्वनि विरोधी तथा
3. जयरथ द्वारा प्रदर्शित ध्वनि विरोधीमत।[18]

ध्वन्यालोक की पहली कारिका में आनन्दवर्धन ने ध्वनिविरोधियों के तीन मतों को प्रस्तुत किया है–

''काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्मनातपूर्वः.....

तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम् (1/1)

काव्य के आत्मभूत जिस तत्त्व को विद्वान् लोग ध्वनि नाम से कहते आये हैं; कुछ लोग उसका अभाव मानते आये हैं। दूसरे लोग उसको भाक्त (गौण, लक्षणागम्य) कहते हैं; और कुछ लोग उसके रहस्य को वाणी का अविषय (अनिर्वचनीय) बतलाते हैं; अतएव ध्वनि के विषय में इन नाना विप्रतिपत्तियों के होने के कारण उनका

निराकरण कर ध्वनि–स्थापना द्वारा सहृदयों की मनः प्रीति के लिए हम उस ध्वनि के स्वरूप का निरूपण करते हैं; ध्वनिकार की इस ध्वनि–स्वरूप विषयिणी व्याख्या को पहले ही विस्तार दिया जा चुका है।

अब प्रक्रान्त होने से ध्वनि विरोधियों के तीनों मतों को निरूपित किया जा रहा है। ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि विरोधी विमतियों को सारतः प्रस्तुत करते हुए उनका निरसन इस प्रकार किया है–

अभाववादियों के अनुसार ध्वनि सिद्धान्त के पूर्व काव्य में चारूता विद्यमान थी एवं काव्य तत्त्वज्ञ उसका आस्वाद लेते थे। यदि यह मत स्वीकार किया जाय कि 'ध्वनि ही काव्य की आत्मा है' तो पूर्ववर्ती काव्य, काव्यत्वहीन हो जाते हैं। इसका उत्तर देते हुए ध्वनिकार का कथन है कि ध्वनिपूर्वकाल में, ध्वनि का नामकरण नहीं हुआ था; किन्तु पर्यायोक्ति, अपहनुति, विशेषोक्ति प्रभृत अलंकारों में व्यंग्य अर्थ स्पष्टतः विद्यमान होता है। इस व्यंग्य अर्थ का महत्व व्यंजना के ही कारण होता है। इसके अतिरिक्त उस समय रस की स्थिति तो सबको स्वीकार थी। ध्वनिवादी रस को व्यंग्य मानते हैं; अतः रस की मान्यता में व्यंग्य या ध्वनि की स्वीकृति निहित है। ध्वनिपूर्व–युग में इसका सैद्धान्तिक विवेचन भले ही न हुआ हो; किन्तु रामायण–महाभारतादि लक्ष्यग्रन्थें में इसका प्रयोग पर्याप्त रूप से किया गया है।[20]

अभाववादियों के इस कथन का, कि ध्वनि सिद्धान्त रमणीयता का अतिक्रमण नहीं करता; अतः उसका अन्तर्भाव गुण एवं अलंकारों में ही हो जायेगा, का खण्डन करते हुए ध्वनिकार का कहना है कि अलंकारादि केवल वाच्य–वाचक भाव पर आश्रित है; अतः व्यंग्य–व्यंजक भाव पर आधारित ध्वनि का समावेश उनमें नहीं हो सकता अलंकारादि तो ध्वनि के ही अंग रूप हैं। ध्वनि काव्य में व्यंग्यार्थ का प्राधान्य होता है; जबकि अलंकारों में व्यंग्यार्थ गौण होता है।[21]

भाक्तवादियों के मतों का खण्डन करते हुए ध्वनिकार का कहना है कि ध्वनि लक्षणा से सर्वथा भिन्न है। वह उसके साथ अभेद को नहीं प्राप्त हो सकती। गुणवृत्ति, भक्ति, वाचक पर आश्रित होती है। वह व्यंजनामूलक ध्वनि से अभिन्न नहीं हो सकती। ध्वनि या उसके अन्य भेदों में भक्ति या लक्षणा नहीं हो सकती; अतएव भक्ति ध्वनि नहीं हो सकती।[22]

अन्तिम विरोधी पक्ष का खण्डन वृत्तिकार ने किया है– सहृदय–संवेद्य ध्वनि को अलक्षणीय कहने वाले अलक्षणीयतावादी आचार्य बिना सोचे–समझे ही ऐसा कहते हैं; ''क्योंकि अब तक कही हुई तथा आगे कही जाने वाली से ध्वनि के सामान्य ओर विशेष लक्षण प्रतिपादित कर देने पर भी यदि ध्वनि को अलक्षणीय कहा जाय तो फिर ऐसा अलक्षणीयत्व तो सभी वस्तुओं में आजावेगा।''[23]

इस प्रकार आचार्य आनन्दवर्धन ने 'ध्वनि' को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया एवं अपने से पूर्ववर्ती तथा अपने समय तक प्रचालित ध्वनि विरोधी मतों का युक्तिपूर्वक खण्डन कर आगे के लिए ध्वनि–मार्ग को प्रशस्त कर दिया।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. आचार्य विश्वेश्वर, 'ध्वन्यालोक' (व्याख्याकार) ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, ग्रन्थ माला का 97वाँ ग्रन्थ प्रथम संस्करण 1962 ई0 (भूमिका) पृ0सं0 1

2. आनन्दवर्धन 'ध्वन्यालोक' प्रथम उद्योत, कारिका सं0 01

3. आचार्य विश्वेश्वर, 'ध्वन्यालोक' (टीका) ज्ञानमण्डल लि0 वाराणसी, ग्रन्थमाला 97 वाँ प्रथम संस्करण 1962 ई0 भूमिका पृ0सं0 1–2

4. डॉ0 शिवनाथ पाण्डेय, 'ध्वनिसम्प्रदाय का विकास', साहित्य प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1971 पृ0सं0 147

5. आनन्दवर्धन, 'ध्वन्यालोक', प्रथम उद्योत, कारिका सं0 2.

6. आचार्य विश्वेश्वर, 'ध्वन्यालोक टीका' ज्ञानमण्डल वाराणसी, ग्रन्थमाला 97वाँ, संस्करण 1962, का02 पृ0सं0 11–12

7. वही, पृ0सं0 12

8. आनन्दवर्धन, 'ध्वन्यालोक', प्रथम उद्योत, कारिका सं0 13.

9. वही, कारिका सं0 4.

10. वही, कारिका सं0 6

11. आचार्य विश्वेश्वर, ध्वन्यालोक टीका, ज्ञानमण्डल वाराणसी संस्करण 1962, पृ0सं0 3

12. वही, पृ0सं0 3

13. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत कारिका सं0 13

14. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, कारिका सं0 4

15. डॉ0 राममर्ति शर्मा, 'ध्वनि–सिद्धान्त', अजन्ता पब्लिकेशन्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 1980, पृ0सं0 72

16. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद पृ0सं0 13

17. डॉ0 राममूर्ति शर्मा, 'ध्वनि–सिद्धान्त', अजन्ता पब्लिकेशन्स, दिल्ली प्रथम संस्करण 1980 पृ0सं0 72,73 एवं 74

18. कृष्ण कुमार, अलंकार शास्त्र का इतिहास, साहित्य भण्डार मेरठ, द्वितीय संस्करण 1982–83 पृ0सं0 428–429

19. आचार्य आनन्दवर्धन, 'ध्वन्यालोक' प्रथम उद्योत, कारिका सं0 1

20. प्रो0 राजवंश सहाय 'हीरा', 'भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधिसिद्धान्त' चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण 1967, पृ0सं0 143

21. वही, पृ0सं0 143

22. वही, पृ0सं0 143

23. वही, पृ0सं0 143

SHIKSHA SAMVAD
PASSION TOWARDS EXCELLENCE

SHIKSHA SAMVAD

An Online Quarterly Multi-Disciplinary
Peer-Reviewed or Refereed Research Journal
ISSN: 2584-0983 (Online) Impact-Factor, RPRI-3.87
Volume-02, Issue-02, Dec.- 2024
www.shikshasamvad.com
Certificate Number-Dec-2024/17

# Certificate Of Publication

***This Certificate is proudly presented to***

रत्नेश पाण्डेय

**For publication of research paper title**

"ध्वनि तत्त्व–विमर्श"

Published in 'Shiksha Samvad' Peer-Reviewed and Refereed Research Journal and E-ISSN: 2584-0983(Online), Volume-02, Issue-02, Month December, Year- 2024, Impact-Factor, RPRI-3.87.

**Dr. Neeraj Yadav**
**Editor-In-Chief**

**Dr. Lohans Kumar Kalyani**
**Executive-chief- Editor**

**Note:** This E-Certificate is valid with published paper and the paper must be available online at www.shikshasamvad.com